DEV SANSKRITI: Interdisciplinary International Journal **(2015), 6, 34-38**

वैदिक कालीन आयुध निर्माण तकनीकी

मनोज कुमार राव एवं ईप्सित प्रताप सिंह

सारांश

भारतीय संस्कृति एक हाथ में शस्त्र तथा दूसरे हाथ में शास्त्र का संदेश देती है। वैदिक काल मे तत्कालिन ऋषि मुनियों ने दुष्टों के दमन हेतु आयुध निर्माण पद्धति को विकसित किया था। मध्यकाल और आधुनिक काल में भारत में रही विदेशी ताकतों ने आयुध निर्माण के क्षेत्र में परनिर्भरता के अवगुण को विकसित किया। भारतीय संस्कृति में सदैव 'बहुजन हिताय एवं बहुजन सुखाय' का सिद्धान्त विद्यमान रहा है किन्तु इसके साथ ही साथ प्रत्येक काल में इस सिद्धान्त के विपरीत स्वभाव वाले लोग भी पाये गये हैं जो पर पीड़ा एवं पर अधिकार में सुख का अनुभव करते हैं। ऐसे लोगों से आत्मरक्षा एवं लोकरक्षा हेतु आयुधों की आवश्यकता पड़ती है। वैदिक ग्रंथों में अनेकों आयुधों का उल्लेख मिलता है जिनका प्रयोग वैदिक देवताओं एवं आर्य योद्धाओं द्वारा सदैव लोक कल्याण में किया गया। उन आयुधों की निर्माण तकनीकी साधारण थी किन्तु उनकी शक्ति असीमित थी, क्योंकि उन आयुधों का संचालन मंत्र शक्ति पर आधृत था जिन्हें वैदिक ऋषियों एवं देवताओं ने अपनी तप शक्ति से लोक हित को ध्यान में रखकर निर्मित किया था। प्रस्तुत शोधपत्र में वैदिक कालीन उन्हीं आयुधों के प्रकार एवं निर्माण तकनीकी के विषय में उल्लेख किया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र भारत के स्वर्णिम अतीत की शानदार उपलब्धियों को याद कर आयुध निर्माण के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता को प्रेरित करने का प्रयास है। निःसंदेह आज हमारे पास संसाधनों का अभाव नहीं है बस आवश्यकता सृजनात्मक आत्मनिर्भरता को प्राप्त करने की है।

कूट शब्द : आयुध, युद्ध, वेद, तकनीकी एवं अस्त्र–शस्त्र ।

सृष्टि का प्रत्येक प्राणी अपने अस्तित्व की सुरक्षा के लिए सदैव प्रयासरत रहता है। इसी तीव्र इच्छा ने मानव को आयुध आविष्कार हेतु प्रेरित किया। स्वसंरक्षण तथा मानवीय संस्कृति की सुदीर्घ विकास यात्रा में आयुघों का विशेष योगदान रहा है। पाषाण काल में आदिमानव ने स्वयं से शक्तिशाली एवं हिंसक पशुओं से सुरक्षा हेतु आयुधों के रुप में विखण्डित प्रस्तरों का प्रयोग किया। मानवीय सभ्यता के उषःकालीन आदिमानव की प्रकृति पर यह प्रथम विजय थी। सुरक्षा एवं क्षुधा पूर्ति दोनों के लिए अश्मायुधों का निर्माण तत्कालीन मानव का क्रांतिकारी आविष्कार था। मानवीय बुद्धि एवं प्राविधिक संचेतना जिस प्रकार अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखने तथा विविध प्रकार के आयुधों का निर्माणकर्ता एवं प्रयोगकर्ता बना वह उसके तकनीकी ज्ञान को प्रकट करता है। द्रुत गति से अपने विकास पथ पर अग्रसित मानव ने आयुधों की स्थूलता की जगह सूक्ष्मता पर ध्यान दिया जिससे उनकी कार्य क्षमता और अधिक प्रभावी हुई। वेदों के अनुशीलन से स्पष्ट होता है कि वैदिक आर्य विजिगीषु एवं बलाधृत थे। उनकी राजनीती शक्तिवाद पर आधारित थी। तत्कालीन साम्राज्य, स्वराज्य, वैराज्य, जनराज्य आदि शासन की व्यवस्था समरतंत्र से संचालित होती थी। इसीलिए वेदों में युद्धों का अधिकाधिक उल्लेख मिलता है, जिन युद्धों में विविध प्रकार के आयुधों का प्रयोग किया जाता था। उन आयुधों की शक्ति एवं संहारक क्षमता सम्बद्ध देवता एवं उसकी मंत्र शक्ति पर आधृत होता था।

आज के समय में जब दुनिया के तमान आयुण भंडार दुनिया को सैकड़ों बार समाप्त करने की क्षमता रखते हो, तब इस बात पर यकीन करना मुश्किल है कि वैदिक कालीन आयुध मंत्र की शक्ति से आज से बेहतर परिणाम देते थे। परन्तु प्राचीन शास्त्र व पुरातात्विक प्रमाण इस तथ्य को उजागर करते है। वैदिक आयुध निर्माण संसाधनों से अधिक साधना पर निर्भर थे। आयुधों का उपयोग दुर्बल की रक्षा व दुष्टों के दमन के लिए किया जाता था, वर्तमान की भांति हथियारों का ऐसा जखीरा एकत्र नहीं किया जाता था जो आम जन के लिए अहितकर हो।

आयुध साधन

अश्म (प्रस्तर)

प्राचीन भारतीय आयुधो के क्रमिक विकास के अध्ययन से ज्ञात होता है कि आदिमानव द्वारा प्रयुक्त अश्म साधन की परम्परा का प्रचलन वैदिक काल तक निरन्तर विद्यमान था (ऋग्वेद, 7/104)। वेदों में अश्म को आयुध की कोटि में परिगणित किया गया है। ऋग्वेद की विभिन्न ऋचाओं में अश्मायुधो द्वारा शत्रुओं के हनन करने का उल्लेख प्राप्त होता है (ऋग्वेद, 7/104/5)। वैदिक काल में अश्म का

प्रयोग आयुध साधन के रुप में किया जाता था (ऋग्वेद 7/104/7)। एक ऋग्वैदिक प्रंसग मे अस्म द्वारा राक्षसों को नष्ट करने की याचना की गयी है (ऋग्वेद 7/104/7)। अथर्ववेद में अश्मायुध से सुरक्षित रहने का उल्लेख किया गया है (अथर्ववेद, 1/26/1)। वैदिक साहित्य में वर्णित विभिन्न संकेतों से स्पष्ट है कि उसका उपयोग आयुध निर्माण के लिए किया जाता था।

अयस

अश्मायुधों के निर्माता आर्यों ने अपनी अन्वेषणीय मेधा से धातुओं की खोज वैदिक काल में ही कर लिया था। सभ्यता के परिवर्तनकारी कारको में धातुओं का स्थान सर्वोपरि है। ऋग्वेद में उल्लिखित 'अयस' को विद्वानों का एक वर्ग लौह स्वीकारता है (बनर्जी, 1965, पृ.158–60), जबकि दूसरा वर्ग उसे ताम्र मानता है (चाइल्ड, 1926, पृ.29)। ऋग्वेद में ताम्र शब्द का कहीं उल्लेख नहीं मिलता किन्तु ऐसे संन्दर्भ प्राप्त हैं, जिनसे ताम्र का अर्थ द्योतित होता है। श्रेडर के अनुसार 'आर्यों के भारत में प्रारम्भिक स्थिति से ज्ञात होता है कि उन्होंने आरम्भ में ताम्र का तथा कालान्तर में कांस्य का प्रयोग किया (श्रेडर, 1890, पृ.212)। वैदिक शस्त्रास्त्र साधनों में 'लोहित अयस' तथा 'कृष्ण अयस' को विद्वानों ने क्रमशः ताम्र तथा लौह धातु का अर्थ ग्रहण किया है जिससे स्पष्ट होता है कि वैदिक आर्य ताम्र एवं लौह धातु का प्रयोग आयुध साधन के रुप में करते थे।

त्रपु

त्रपु एक कोमल, दुर्बल एवं श्वेत रंग का धातु है। ताम्र एवं लौह धातु में इसका सम्मिश्रण शीघ्र और सरल होता है। अधिकांशतया ताम्र धातु के साथ इसका प्रयोग किया जाता है जिससे कांस्य नामक नवीन मिश्रित धातु तैयार होती है जो अधिक कठोर व दृढ़ होती है। ऋग्वैदिक आर्य त्रपु धातु से अपरिचित थे, क्योंकि ऋग्वेद में त्रपु धातु का उल्लेख प्राप्त नहीं हुआ है, परन्तु उत्तर वैदिक काल में इसका ज्ञान हो गया था। अथर्ववेद में त्रपु धातु के शीघ्र प्रगलन का संकेत प्राप्त होता है (अथर्ववेद, 11/8/8)। इसके अतिरिक्त उत्तर वैदिक कालीन ग्रंथों की धातु सूची में 'त्रपु' धातु की भी गणना की गयी है (वाजसनेयी संहिता, 9/13; काठक संहिता, 18/90)। अतः त्रपु एवं ताम्र के सम्मिश्रण से निर्मित 'कांस्य' धातु का निर्माण उत्तर वैदिक काल में किया जाता था। इसी काल में लौह धातु से निर्मित शस्त्रास्त्रों का भी प्रचलन प्रारम्भ हुआ।

शीशा

मिश्रित धातुओं से निर्मित आयुधों में शीशा नामक धातु का विशेष योगदान रहा है। शीशा कोमल, लचीला एवं तन्य धातु है। ताम्र के साथ शीशा मिश्रित करने से निम्न स्तर का कांस्य निर्मित होता है। ऋग्वेद में शीशा का उल्लेख अप्राप्य है, किन्तु उत्तर वैदिक कालीन साहित्य में शीशा के विविध उल्लेखों से संकेतित होता है कि वैदिक आर्य शीशे का नियमित प्रयोग करते थे (अथर्ववेद, 1/16/2–4; शतपथ ब्राहम्ण, 5/1/2/4)। अथर्ववेद में शत्रुओं पर आक्रमण करने के लिए शीशे के प्रयोग का उल्लेख मिलता है (अथर्ववेद, 1/16/3–4)।

उपर्युक्त उल्लेखों एवं विवरणों से स्पष्ट प्रमाणित होता है कि वैदिक आर्य प्रस्तर एवं धातुओं का प्रयोग विविध प्रकार के आयुध निर्माण में करते थे। इसके अलावा काष्ठ एवं अस्थि का भी व्यापक प्रयोग होता था (ऋग्वेद, 1/84/13)।

प्रमुख आयुध एवं निर्माण तकनीकी

शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने तथा अपनी सुरक्षा हेतु वैदिक काल में आर्यों द्वारा अनेक प्रकार के आयुधों का निर्माण किया जाता था। प्रमुख आयुध निम्नलिखित हैं –

वज्र

वैदिक कालीन आयुधों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं बहुशः उल्लिखित आयुध वज्र है। यास्क ने निघण्टु में वज्र के अठ्ठारह पर्यायी पदों का उल्लेख किया है जिनमें विद्युत, नेमि, हेति, सृक, अर्क, वध, कुत्स, कुलिश, सायक आदि प्रमुख हैं (निघण्टु, 2/20)। 'वज्र' शब्द की व्युत्पति 'वृज्' धातु से हुई है जिसका अर्थ है वह आयुध जो प्राणी को प्राणों से पृथक कर देता है (शास्त्री, 1972, पृ.339)। वज्र एक सुदृढ़ अस्त्र था जो प्रहार करने पर शत्रु को निश्चिततः नष्ट कर देता था। वैदिक काल में विविध प्रयोजनों के लिए विविध प्रकार के वज्र होते थे। ये अस्त्र एवं शस्त्र रूपों में होते थे जिसकी पुष्टि ऋग्वेद के वज्र सम्बन्धी विविध सन्दभों से होती है।

वैदिक युग में वज्र का निर्माण विविध धातुओं से किया जाता था। ऋग्वेद के सन्दर्भों से ज्ञात होता है कि वज्र के निर्माण में अयस का उपयोग किया जाता था (ऋग्वेद, 1/52/8, 1/56/3, 8/96/3)। दयानाथ त्रिपाठी ने अयस का सम्बन्ध ताम्र धातु से स्थापित किया है (त्रिपाठी, 1995 पृ.11–17)। अथर्ववेद में अयोमुखी वज्र का उल्लेख मिलता हैं, जिसके अग्र भाग में लौह खण्ड जोड़े जाते थे (वेदश्रयी, 1995, पृ.307)। ऋग्वेद में वज्र निमार्ण हेतु

'हिरण्य' के प्रयोग का भी बहुशः उल्लेख मिलता है (ऋग्वेद, 1/57/2, 7/85/9, 10/23/3)। इसके अतिरिक्त अस्थि से भी वज्र का निर्माण किया जाता था (ऋग्वेद, 1/84/13)।

वज्र के निर्माणकर्ताओं में त्वष्टा का विशिष्ट स्थान था। युद्ध के लिए वज्र का निर्माण मुड़े हुए तथा बिना मुड़े दोनो विधियों से इस प्रकार किया जाता था कि शत्रु का हनन किया जा सके। उसके निर्माण में अग्नि का प्रयोग किया जाता था। वज्र मुख भाग की ओर भारी होता था और उसमें दाहिनी ओर तार का प्रयोग किया जाता था (शतपथ ब्राह्मण, 8/5/1/13)। निरन्तर प्रयोग से जब वज्र की तीक्ष्णता समाप्त हो जाती थी तब उसकी वृद्धि के लिए 'शाणन' किया जाता था (ऋग्वेद, 1/55/1)। इसके अतिरिक्त वज्र को ढालकर भी वज्र निर्मित किया जाता था (ह्वीटनी, 1980, पृ.657)।

वज्र के विविध प्रकार एवं प्रयोगो का विवरण वेदों मे मिलता है। ऋग्वेद में संकेत मिलता है कि इन्द्र ने हाथ में चतुष्कोणीय वज्र धारण कर परुष्णी नदी के युद्ध में विजयी हुआ था (ऋग्वेद, 4/22/2) । कन्धों पर प्रहार करने, वध करने, पुरों को नष्ट करने तथा पर्वतों को तोड़ने (ऋग्वेद, 1/32/6, 1/32/7, 1/32/13) आदि के लिए वज्र का प्रयोग किया जाता था।

धनुष

वैदिक कालीन आयुधों में धनुष एक सर्वप्रिय एवं प्रचलित आयुध था जिसकी लोक प्रियता एवं उपयोगिता आद्यावधि विद्यमान है। यास्क ने 'धनुष' शब्द की व्युत्पति 'धन्व' धातु से माना है अर्थ वध 'करना' है (निरूक्त, 9/16)। उन्होंने अपने निघण्टु में धनुष के छत्तीस पर्यायी पदों का उल्लेख किया है जिनमें ज्या, इषु, धनु आदि विशेष उल्लेखनीय हैं (निघण्टु, 5/3)। 'इषु' शब्द का अर्थ है' इष्यते हिंस्यतेअनेन' अर्थात जिसके द्वारा हिंसा (वध) की जाती है। अर्थात धनुष वह आयुध है जो अपनी ज्या से संयुक्त होकर वाणों के प्रक्षेपण से युद्ध में शत्रुओं का वध करता है (ऋग्वेद, 6/75/2)।

वैदिक काल में धनुष का निर्माण विशेषतया काष्ठ की एकल पट्टिका से किया जाता था (ऋग्वेद, 10/27/22)। स्टोन (2000) के अनुसार धनुष निर्माण हेतु सामान्तया पांचीन काल में पशु श्रृंग का प्रयोग किया जाता था (पृ.130)। विष्णु के धनुष को शारंग कहा गया है जो स्पष्टतः संकेत करता है कि श्रृंग से धनुष का निर्माण किया जाता था (धनुर्वेद संहिता, श्लोक– 44, 45)। सामान्यतः धनुष निर्माण प्रविधि मे सर्वप्रथम काष्ठ दण्ड के मध्य में हस्तक (हैंडिल) बनाया जाता था। तत्पश्चात मध्य से दोनों छोरों में वक्रता लाने के लिए ज्या से आबद्ध कर दिया जाता था। धनुष के दोनों सिरों को प्रत्यंचा से आबद्ध करने के लिए उन पर कांटेदार संरचना बनायी जाती थी (ऋग्वेद, 1/156/5, 5/75/4)। जिससे धनुष की ध्वनि, गति एवं प्रक्षेपण में कुशलता की वृद्धि होती थी।

वैदिक कालीन आयुधों में धनुष के वाण का विशेष महत्व था। ऋग्वेद के शस्त्र सज्जा से सम्बन्धित सूक्त में दो प्रकार के – श्रृंग युक्त एवं धातु युक्त सिर वाले बाणों का उल्लेख मिलता है (ऋग्वेद, 6/75/15)। बाण का अग्र भाग श्रृंग एवं धातु दोनों से बनाया जाता था जबकि उसका दण्ड भाग काष्ठ अथवा लौह से बनाया जाता था। दण्ड की लम्बाई लगभग तीन फुट तक होती थी (ऋग्वेद, 2/24/8, 8/7/4)। बाण का पश्च भाग विभिन्न पक्षियों के पंख से बनाया जाता था।

परशु

वैदिक साहित्य मं परशु का उल्लेख एक आयुध के रूप में किया गया है जो वैदिक युगीन आयुधों में एक प्रमुख आयुध था। परशु शब्द की व्युत्पति 'शृ' धातु से हुई है। 'शृ' धातु हिंसा के अर्थ को प्रकट करता है। यास्क ने 'शृ' धातु से कुचलना या शमन करना अर्थ स्वीकारा है (निरूक्त, 1/10)।

ऋग्वेद में त्वष्टा नामक देवता के हाथ में आयस परशु धारण करने का उल्लेख प्राप्त होता है (ऋग्वेद, 8/29/3)। त्रिपाठी (1995) ने अयस को ताम्र माना है और ऋग्वेद में वर्णित 'स्वधिति परशु' को ताम्र निर्मित माना है। वैदिक काल तक परशु का प्रयोग बहुप्रयोजनीय था (ऋग्वेद, 6/3/4)। आयुध के अतिरिक्त किसी वस्तु को काटने के लिए भी किया जाता था। परशु का निर्माण प्रायः लोहे से किया जाता था (ऋग्वेद, 10/53/9)। वैदिक युग के पश्चात भी युद्ध के लिए परशु विशेषतः उपयोगी समझा जाता था। भगवान परशुराम का यह सर्वप्रिय आयुध कहा गया है।

पाश

वैदिक युगीन संघर्षशील एवं निरन्तर समर मे सन्नद्ध जनगणों द्वारा विविध प्रकार के आयुधों का अविष्कार एवं निर्माण किया जाता था। पाश भी उन्हीं में से एक प्रचलित आयुध था जो युद्ध में शत्रुओं को आबद्ध करता था और उनका वध भी करता था। ऋग्वैदिक देव मण्डल के प्रमुख देवता वरुण अपने विशिष्ट आयुध पाश के साथ अनेक ऋचाओं में विवृत हैं (ऋग्वेद, 1/24/15, 1/25/21,

6/74/4)। ये पाश तीन या सात लड़ियों के हैं जिनसे वे दुष्टों एवं अत्याचारियों को बांधते हैं (अथर्ववेद, 4/16/4)। ऋग्वेद में आदित्यगणों का उनके आयुध पाश के साथ विवरण प्राप्त होता है (ऋग्वेद, 2/26/6)। यजुर्वेद के रुद्राध्याय मे रुद्र के आयुधों का विशद् वर्णन किया गया है जिनमें पाश को उनका प्रमुख आयुध बताया गया है।

क्षुर

वेद वर्णित आयुधों में क्षुर नामक आयुध का भी यत्र–तत्र बहुप्रयोजनीय उल्लेख प्राप्त होता है। प्रथम प्रयोजन केश–कर्तन उपकरण के रूप में तथा दूसरा प्रयोजन आयुध के रूप में, जो युद्ध में शत्रु पर आक्रमण करने के लिए किया जाता था। अथर्ववेद में एक फलकीय अथवा द्विफलकीय लघु आयुध के रूप में उसका उल्लेख मिलता है (अथर्ववेद, 8/1/2)।

वैदिक आयुध के ज्ञान की वर्तमान प्रासंगिकता

भारत एक स्वर्णिम इतिहास से संपन्न राष्ट्र है। भारत की धरती ने अनेकानेक बाह्य आक्रमणेां को सहन किया है। प्राचीन वैदिक तंत्र चाहे वह सामाजिक, आर्थिक या सैन्य हो को अपनाया जाता तो हमें कभी गुलामी का दंश नहीं झेलना पड़ता। प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया गया है कि वैदिक कालीन विद्वान किस तरह न्यूनतम संसाधनों से बेहतरीन आयुध निर्माण किया करते थे।

आज हमारे पास पृथ्वी, अग्नि तथा ब्रह्मोस सरीखे हथियार है परन्तु ज्यादातर में हम विदेशी तकनीकों पर निर्भर है। आवश्यकता इस बात की है कि हम वैदिक सृजनात्मकता को सीखे और मौलिक आयुध निर्माण पद्धति को विकसित करें। वैदिक कालीन आयुध पर्यावरण हितैशी हुआ करते थे परन्तु आज के आयुध पर्यावरण के लिए गंभीर संकट उत्पन्न कर देते है। हम परमाणु बम, हाइड्रोजन बम के साये में जीते है। अर्थात् आज का आयुध आतंक को जन्म देता है जबकि वैदिक आयुध पद्धति सुरक्षा और शांति का भाव लाती थी। हालाकि भारत आज भी हजारों सालों की शांति और सहिष्णुता की राह पर चल रहा है लेकिन अभी आत्मनिर्भरता एवं सृजनात्मकता के संबंध में अनेकों अध्याय लिखना शेष है।

निष्कर्ष

आयुधों के गहन अनुशीलन से स्पष्ट होता है कि वैदिक कालीन आयुध काष्ठ, ताम्र, कांस्य, लौह, प्रस्तर एवं अस्थि आदि साधनों से विनिर्मित किये जाते थे। अलग–अलग आयुधों के निर्माण हेतु तकनीकियों का प्रयोग किया जाता था। युद्धों में इन अस्त्र–शस्त्रों से मर्मांगों की रक्षा हेतु योद्धा विविध प्रकार के अंगरक्षक आयुध जैसे वर्म एवं कवच आदि भी धारण करते थे। ऋग्वेद में युद्ध हेतु प्रस्थान करने वाले अपने यजमान राजा की रक्षा के लिए पुरोहित प्रार्थना करते हुए कहता है कि वर्म उसकी रक्षा करें।

वैदिक कालीन शस्त्रास्त्रों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण आयुध वज्र था जिसका सम्बन्ध देवराज इन्द्र से था। वैदिक कालीन अन्य आयुधों का सम्बन्ध प्रायः अलग–अलग देवताओं से था। इससे यह संभावना की जा सकती है कि उन आयुधों का निर्माण एवं नियंत्रण विशिष्ट देवताओं के अधीन रहा हो। देव संस्कृति के अपने पृथक–पृथक जनगण थे और उन जनगणों में प्रचलित आयुधों की विशिष्टता रही होगी जिनका निर्माण उन जनगणों के विशिष्ट तकनीकी ज्ञान के आधार पर किया जाता रहा होगा। वैदिक कालीन शस्त्रास्त्रों के अध्ययन से यह निष्कर्षित है कि वैदिक काल में आयुध निर्माण की तकनीकी विकसित अवस्था में रही होगी। धातुओं के अन्वेषण से आयुध एवं उनके निर्माण के तकनीकी क्षेत्र में जो परिष्कार एवं परिवर्धन हुआ वह वेदों में स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित होता है। सभी वैदिक पक्ष कुछ न कुछ शिक्षण देते है, आयुध निर्माण पद्धति भी अलग नहीं है। प्रस्तुत शोध पत्र वैदिक कालीन आयुध ज्ञान की झलक मात्र है, इसमें और बेहतर ज्ञान के विश्लेषण की संभावनाएं मौजूद है।

मनोज कुमार राव, पी–एच0 डी0, एसोसिएट प्रोफेसर; **ईप्सित प्रताप सिंह,** शोधार्थी, भारतीय इतिहास एवं संस्कृति विभाग, देव संस्कृति विश्वविद्यालय, गायत्रीकुंज शांतिकुंज, हरिद्वार, भारत।

सन्दर्भ सूची

चाइल्ड, वी. जी. (1926). *दी आर्यन्स।* लंदन– केगन पॉल एण्ड ट्रेन्च ट्रूभर पब्लिकेशन।

बनर्जी, एन. आर. (1965). *आयरन एज इन इण्डिया।* नयी दिल्ली– मुन्शीराम मनोहर लाल पब्लिकेशन।

वेदश्रयी, वीरसेन (1995). *वैदिक सम्पदा।* नयी दिल्ली– आर्य समाज प्रकाषन।

शास्त्री, शिवनारायण (1972). *निरुक्त के पांच अध्याय।* वाराणसी– इण्डोलोजिकल बुक हाउस।

स्टोन, जी. सी. (2000). *अ ग्लासरी आफ दी कंस्ट्रक्शन एण्ड यूज आफ आर्म्स एण्ड आर्मर।* न्यूयार्क– डोवर पब्लिकेशन।

श्रेडर (1890). *प्रीहिस्टारिक एण्टीक्वीटीज ऑफ एंशिएण्ट आर्यन्स।* लन्दन– चार्ल्स ग्रिफन पब्लिकेशन।

ह्वीटनी, विलियम ड्वाइट (1980). *अथर्ववेद (वाल्यूम –2)।* कैम्ब्रिज– कैम्ब्रिज पब्लिकेशन।

त्रिपाठी, दयानाथ (1995). *आर्किलाजी एण्ड टेडिषन।* वाराणसी– इन्डोलोजिकल बुक हाउस।

उत यो द्यामतिसर्पात् परस्तान्न स मुच्यातै वरुणस्य राज्ञः।
दिवः स्पशः प्र चरन्तीदमस्य सहस्त्राक्षा अति पश्यन्ति भूमिम।। (अथर्ववेद, 4/16/4)
उदेनं भगो अग्रभीदुदेन सोमो अंशुमान्।
उदेनं मरुतो देवा उदिन्द्राग्नी स्वस्तये।। (अथर्ववेद, 8/1/2)
आरे३सावस्मदस्तु हेतिर्देवासो असत्। आरे अश्मा यमस्यथ।। (अथर्ववेद, 1/26/1)
पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या उत ये मृगा।
शकुन्तान् पक्षिणो ब्रूमस्ते नो मुंचन्त्वंहसः।। (अथर्ववेद, 11/8/8)
सीसायाध्याह वरुणः सीसायाग्निरुपावति।
सीसं म इन्द्रः प्रायच्छत् तदंग यातुचातनम्।।
इदं विष्कन्धं सहत इदं बाधते अत्त्रिणः।
अनेन विश्वा ससहे या जातानि पिशाच्याः।।
यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम्।
तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसो अवीरहा।। (अथर्ववेद, 1/16/2–4),
इदं विष्कन्धं सहत इदं बाधते अत्त्रिणः।
अनेन विश्वा ससहे या जातानि पिशाच्याः।।
यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम्।
तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसो अवीरहा।। (अथर्ववेद, 1/16/3–4)
इन्द्रसोमा तपतं रक्ष उब्जतं न्यर्पयतं वृषणा तमोवृधः।
परा शृणीतमचितो न्योषतं हतं नुदेथां नि शिशीतमत्त्रिणः।। (ऋग्वेद, 7/104)
इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवस्पर्यग्नितप्तेभिर्युवमश्महन्मभिः।
तपुर्वधेभिरजरेभिरत्त्रिणो नि पर्शाने विध्यतं यन्तु निस्वरम्।। (ऋग्वेद, 7/104/5)
प्रति स्मरेथां तुजयद्भिरेवैर्हतं द्रुहो रक्षसो भंगुरावतः।
इन्द्रासोमा दुष्कृते मा सुगं भूद्यो न कदा चिदभिदासति द्रुहा।। (ऋग्वेद, 7/104/7)
जघन्वाँ उ हरिभिः संभृतक्रतविन्द्र वृत्रं मनुषे गातुयन्नपः।
अयच्छथा बाह्वोर्वज्रमायसमधारयो दिव्या शूर्यं दृशे।। (ऋग्वेद, 1/52/8)
स तुर्वणिर्महाँ अरेणु पौंस्ये गिरेर्भृष्टिर्न भ्राजते तुजा शवः।
येन शुष्णं मायिनमायसो मदे दुध्र आभूषु रामयन्नि दामनि।। (ऋग्वेद, 1/56/3)
इन्द्रस्य वज्र आयसो निमिश्ल इन्द्रस्य बाह्वोर्भूयिष्ठमोजः।
शीर्षन्निन्द्रस्य क्रतवो निरेक आसन्नेषन्त श्रुत्या उपाके।। (ऋग्वेद, 8/96/3)
अध ते विष्वमनु हासदिष्टय आपो निम्नेव सवना हविष्मतः।
यत्पर्वते न समशीत हर्यत इन्द्रस्य वज्रः श्नथिता हिरण्ययः।। (ऋग्वेद, 1/57/2)
स्पर्धन्ते वा उ देवहूये अत्र येषु ध्वजेषु दिद्यवः पतन्तिः।
युवं ताँ इन्द्रावरुणावमित्रान्हतं पराचः शर्वा पिषूचः।। (ऋग्वेद, 7/85/9)
यदा वज्रं हिरण्यमिदथा रथं हरी यमस्य वहतो वि सूरिभिः।
आ तिष्ठति मघवा सनश्रुत इन्द्रो वाजस्य दीर्घश्रवसस्पतिः।। (ऋग्वेद, 10/23/3)
इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः। जघान नवतीर्नव।। (ऋग्वेद, 1/84/13)
दिवश्चिदस्य वरिमा वि प्रथम इन्द्रं न मह्ना पृथिवी चन प्रति।
भीमस्तुविष्मांचर्षणिभ्य आतपः शिशीते वज्रं तेजसे न वंसगः।। (ऋग्वेद, 1/55/1)
वृषा वृषन्धि चतुरश्रियस्यन्नुग्रो बाहुभ्यां नृतमः शचीवान्।
श्रिये परुष्णीमुषमाण ऊर्णां यस्याः पर्वाणि सख्याय विव्ये।। (ऋग्वेद, 4/22/2)
अयोद्धेव दुर्मद आ हि जुह्वे महावीरं तुविबाधमृजीषम्।
नातारीदस्य समृतिं वधानां सं रुजानाः पिपिषः इन्द्रशत्रुः।। (ऋग्वेद, 1/32/6)
अपोदहस्तो अपृतन्यदिन्द्रमास्य वज्रमधि सानौ जघान।
वृष्णो वध्रि प्रतिमानं बुभूषन्पुरुत्रा वृत्रो अशयद्वयस्तः।। (ऋग्वेद, 1/32/7)
नास्मै विद्युन्न तन्यतुः सिषेध न यां मिहमकिरद्धादुनिं च।
इन्द्रश्च यद्युयुधाते अहिश्चोतापरीभ्यो मघवा वि जिग्ये।। (ऋग्वेद, 1/32/13)
धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना जीव्राः समदो जयेम।
धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेमं।। (ऋग्वेद, 6/75/2)
वृक्षेवृक्षे नियता मीमयद्गौस्ततो वयः प्र पतान् पूरुषादः।
अथेदं विश्वं भुवनं भयात इन्द्राय सुन्वदृषये च शिक्षत्।। (ऋग्वेद, 10/27/22)
आ यो विवाय स चथाय दैव्य इन्द्रय विष्णुः सुकृते सुकृत्तरः
वेधा अजिन्वत्त्रिषधस्थ आर्यमृतस्य भागे यजमानमाभजत्।। (ऋग्वेद, 1/156/5)
सुष्टुभो वां वृषण्वसू रथे वाणीच्याहिता।
उत वां ककुहो मृगः पृक्षः कृणोति वापुषो माध्वी मम श्रुतं हवम्।। (ऋग्वेद, 5/75/4)
आलाक्ता या रुरुशीर्ष्ण्यथो यस्या अयो मुखम्।
इदं पर्जन्यरेतस इष्वै देव्यै बृहन्नमः।। (ऋग्वेद, 6/75/15)
ऋतज्येन क्षिप्रेण ब्रह्मणस्पतिर्यत्र वष्टि प्र तदश्नोति धन्वना।
तस्य साध्वीरिषवो याभिरस्यति नृचक्षसो दृशये कर्णयोनयः।। (ऋग्वेद, 2/24/8)
वपन्ति मरुतो मिहं प्र वेपयन्ति पर्वतान्। यद्यामं यान्ति वायुभिः।। (ऋग्वेद, 8/7/4)
अद्रिः। ग्रावा। गोत्रः। वलः। अन्नः। पुरूभोजाः। वलिषानः।
वाशीमेको बिभर्ति हस्त आयसीमन्तर्देवेषु निध्रुविः।। (ऋग्वेद, 8/29/3)
तिग्मं चिदेम महि वर्पो अस्य भसदश्वो न यमसान आसा।
विजेमानः परशुर्न जिह्वां द्रविर्न द्रावयति दारु धक्षत्।। (ऋग्वेद, 6/3/4)
त्वष्टा माया वेदपसामपस्तमो बिभ्रत्पात्रा देवपानानि शन्तमा।
शिशीते नूनं परशुं स्वायसं येन वृश्चादेतशो ब्रह्मणस्पतिः।। (ऋग्वेद, 10/53/9)
उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो आदितये स्याम।। (ऋग्वेद, 1/24/15)
उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत। अवाधमानि जीवसे।। (ऋग्वेद, 1/25/21)
यजस्व वीर प्र विहि मनायतो भद्रं मनःकृणुष्व वृत्रतूर्ये।
हविष्कृणुष्व सुभगो यथाससि ब्रह्मणस्पतेरव आ वृणीमहे।। (ऋग्वेद, 2/26/6)
तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृलतं नः।
प्र तो मुंचतं वरुणस्य पाशाद् गोपायतं नः सुमनस्यमाना।। (ऋग्वेद, 6/74/4)
वृहस्पते सवितर्बोधर्येन संषितं चित्संतरो सँषिषाधि।
वर्धर्येनं महते सौमगाय विष्व एनमनुमदन्तु देवाः।। (काठक संहिता, 18/90)
दिघुत। नेमिः। हेतिः। नमः। पतिः। सृकः। वघः। वज्रः। ऋर्कः। कुत्सः। कुलिषः।
तुज्जः। तिग्मः। मेनिः। स्वाधितिः। सायकः। परषुषिति वज्रस्य। (निघण्टु, 2/20)
रथे तिष्ठन्नयति वाजिनः पुरस्तासतो यत्र यत्र कामायते। सुषारचिः। अभीषूनां
महिमानं पूजयामि। मनः पष्चात्सन्तोऽ नुयरहन्ति रष्मयः। धनुर्धन्वतेर्गतिकर्मणः।
वधकर्मणो वा। धन्वन्त्यस्मादिशवः। तस्चैशा भवति।। (निरूक्त, 9/16)
अष्वः। शकुनि। मराडूकोः। त्त्रत्ताः। ग्रावांषाः नाराषंसः। रथः। दुन्दुभिः। इशुधिः।
हस्तध्रः। त्त्रभीषवः। धनुज्या। इशुः। श्रस्वाजनी । उलखलमः। वृशभः। द्रुघषाः।
पितुः। नद्यः। त्त्रापः। त्त्रोशधयः। रात्रिः। त्त्रषायानी। श्रृद्धा। पृथिवी। श्रप्वा।
त्त्रग्नायि। उलखलुमसले। हविधीनै। द्यावा पृथिवी। विपाटछतुद्री। त्त्रार्ती।
षुनासीरौ। देवी जोष्ट्री। देवी ऊर्जाहर्ता।। (निघण्टु, 5/3)
अष्मा। पर्वतः। गिरिः। वज्रः। चरूः। वराहः। शंबरः। रौहिणः। रैवतः। फलिगः।
उपरः। उपलः। यमसः। अहिः। अभ्रम। वलाहकः। मेघः। हतिः। ओदनः। वृषन्धिः।
वृत्रः। असुरः। कोष इति मेघा नाम्। (निरूक्त, 1/10)